■ विश्लेषण

बुनियादी शिक्षा का परिवर्तनकारी नजरिया

मैकॉलेवाद बनाम फूले-गांधी-अंबेडकर का मुक्तिदायी शैक्षिक विमर्श

अनिल सद्‌गोपाल

गूजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद में 28 फरवरी से 6 मार्च 2011 तक ''नई तालीम का परिवर्तनकारी नजरिया : उपनिवेशवाद से लेकर नवउदारवाद तक ज्ञान की लड़ाई'', विषय पर व्याख्यान माला आयोजित की गई थी। नई तालीम की इस सार्वजनिक व्याख्यानमाला में प्रो. अनिल सद्‌गोपाल ने सात व्याख्यान दिए। इन व्याख्यानों के विषय– मैकॉलेवाद बनाम फूले–गांधी–अंबेडकर का मुक्तिदायी शैक्षिक विमर्श, उत्पादक काम, भाषा और ज्ञान का शिक्षा शास्त्र, शिक्षा, विषमता और विविधता, शैक्षिक परिवर्तन–अनुभव विश्लेषण और सबक, शिक्षा पर नवउदारवादी हमला, शिक्षा नीति का राजनीतिक अर्थशास्त्र और शिक्षा के अधिकार के मायने, थे। मैकॉलेवाद बनाम फूले–गांधी–अंबेडकर का मुक्तिदायी शैक्षिक विमर्श को यहां प्रस्तुत किया गया है।

यह बड़ी विडंबना है कि गांधी, जिन्होंने जिन्दगी भर मैकॉलेवाद के खिलाफ और ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ झंडा उठा कर देश भर को लामबंद किया, उस लड़ाई के लिए, मैकॉलेवाद से अपनी बात शुरू कर रहा हूं, उनके नई तालीम के नजरिए को पेश करने के लिए। यह अजीब तो लगता है, लेकिन इसलिए जरूरी है कि गांधी ने जिस परिप्रेक्ष्य में, जिस पृष्ठभूमि में इन मुद्दों को उठाया, वे नहीं उठा पाते, अगर देश में मैकॉले की नीति उस समय लागू नहीं होती, मेरा पूरा विश्वास है। आप हिंद स्वराज को पढ़िए और जैसे ही शिक्षा की बात आती है, वे मैकॉले का जिक्र करने लगते हैं, और मैकॉले की शिक्षा ने कैसे हमें गुलाम बनाया, इसका जिक्र करते हैं। मैकॉले–मैकॉले बहुत होता है, पर हम एक बार यह समझें कि ये है क्या? वह समझ लिया, तो बहुत कुछ मामला सरल हो जाएगा। गांधीजी ने समझ लिया था उसे अच्छे तरीके से। कुछ हद तक महात्मा फूले ने समझ लिया था, इसलिए मैंने महात्मा फूले को जोड़ा है। बाबा साहेब अंबेडकर ने शायद उस तरीके से नहीं समझा, जैसे महात्मा फूले और गांधीजी ने समझा, लेकिन अलग नजरिए से वे भी वही बात कह रहे थे, जो फूले और गांधी कह रहे थे। उनमें फर्क था, फर्क की बात हम कर सकते हैं, पर उनके बीच में, जो एक सूत्र था शिक्षा में बदलाव लाने का, उसको भी हम समझ लें। वैसे गांधी को फूले और अंबेडकर के संदर्भ में देखने की, जो मैं हिम्मत कर रहा हूं, शायद इस पर बहुत कम बात की गई है। इस पर बात करते हुए मुझे डर भी लगता है। मैं जानता हूं इस पर जो राजनीतिक विमर्श है, इस विषय में गांधी को फूले और अंबेडकर के साथ जोड़ कर देखना, देश में बहुत सारे तबकों के द्वारा ठीक नहीं माना जाता। लेकिन मैं जान बूझकर कोशिश कर रहा हूं, यह बताने की कि, तीनों के बीच कहां एकता थी और कहां पर फर्क था।

सन् 1835 में ब्रिटिश राज के तहत भारत के प्रशासन को चलाने के लिए, भारत की जो काउंसिल ऑफ इंडिया बनाई गई थी, लॉर्ड मैकॉले उसके एक सदस्य थे। और साथ ही सार्वजनिक शिक्षा के नाम पर जो

बड़ा विभाग गठित किया गया था कलकत्ता में, जो राजधानी थी उस समय ब्रिटिश राज की, उसके वे अध्यक्ष थे। उनके सामने एक मसला था, जो ब्रिटेन की पार्लियामेंट से आया था। उन्होंने एक लाख रुपए का अनुदान दिया था। उस समय का एक लाख रुपया आज के शायद हजारों करोड रुपयों के बराबर है। एक लाख रुपए के अनुदान का, शिक्षा के लिए कैसे इस्तेमाल करना है, पर बहस शुरू हुई, उस काउंसिल ऑफ इण्डिया के तहत। उसमें बहुत से लोगों ने अलग–अलग विचार दिए, तो उन सबको सुनकर मैकॉले साहब ने एक प्रतिवेदन तैयार किया, जिसको 'मैकॉले के मिनट्स' के रूप में या 'मैकाले के प्रतिवेदन' के रूप में याद किया जाता है। मैकॉले के मिनट्स को मैं शायद बीस बार पढ़ चुका हूं, अलग–अलग समय पर। और मुझे लगता है कि अगर मैं उसे 21वीं बार भी पढ़ूंगा तो गलती नहीं करूंगा। हर बार मुझे उसमें से कुछ नया मिल जाता है। मैकॉले चाहे ब्रिटिश साम्राज्यवाद के प्रतिनिधि के रूप में यहां पर थे, लेकिन मुझे यह कहने में आज कोई संकोच नहीं है कि उनके बराबर की दूरदृष्टि के व्यक्ति भारत की शिक्षा के क्षेत्र में बहुत कम हुए होंगे। गांधी अपवाद हैं, फूले अपवाद हैं और अंबेडकर अपवाद हैं। इन तीनों को छोड़ दें और शायद इसमें कुछ हद तक विवेकानंद भी हैं, श्री अरविंद भी हैं, टैगोर भी हैं। इन कुछ बड़े–बड़े नामों को छोड़ दें, तो वैसी दूरदृष्टि बहुत कम की रही होंगी। मुझे इसे कहने में कोई झिझक नहीं है क्योंकि अपने दुश्मन की बुद्धिमत्ता को स्वीकार लेना बेहतर होता है, न कि दुश्मन को बेवकूफ मानते रहना। तो दुश्मन को स्वीकार लेना कि उसने बहुत दूर को सोच लिया। चूंकि उन्होंने दूर का सोचा, इसीलिए हिंदुस्तान की आजादी के साठ साल बाद भी हम उसी रास्ते पर चल रहे हैं। एक इंच इधर–उधर नहीं हुए। अगर कहीं हुए, तो उसको और पुष्ट किया, मजबूत किया, उसको और पुख्ता बनाया, जो मैकॉले ने खुद ने सोचा था उससे और आगे बढ़ गए हम, उससे पीछे नहीं हटे, उसी रास्ते पर आगे बढ़ते गए। उन्होंने जो बहुत–सी बातें कहीं, उनमें से मैं आपके सामने चार बातें रखूंगा। उन्होंने एक बात यह रखी कि भारत में जो तमाम बोलियां बोली जाती हैं, जिसको अंग्रेजी में 'डायलेक्ट' बोलते हैं, उन्होंने उन्हें 'लैंगवेज' नहीं कहा है। उन्होंने डायलेक्ट कहा है। उस समय चूंकि वे बंगाल में थे, तो कहा कि जो आस–पास बोलियां बोली



जाती हैं, तो वे बंगाल की तमाम भाषाओं के बारे में बात कर रहे थे। उस समय का बंगाल बंटा हुआ नहीं था। उसमें वे इतनी कमजोर हैं कि उनमें कोई भी आधुनिक ज्ञान की बात न तो कही जा सकती है और न ही लिखी जा सकती है और न ही किसी और भाषा में (यूरोप की विकसित भाषाओं में) कही हुई बात का उसमें अनुवाद हो सकता है। अनुदित भी नहीं हो सकती हैं। भारत के वे लोग, जो उच्च शिक्षा में आगे बढ़ना चाहते हैं, उनके लिए आवश्यक होगा कि वे अपनी भाषाओं में नहीं बल्कि यूरोप की भाषाओं में उच्च शिक्षा को पाएं। उन्होंने उसी प्रतिवेदन में अन्यत्र लिखा है कि दुनिया की जितनी विकसित भाषाएं हैं, उनमें भारत की या एशिया की कोई भी भाषा नहीं है। न तो अरब देशों की न अफ्रीका की और न ही लैटिन अमेरिका की। जो यूरोप की विकसित भाषाएं हैं, उसमें सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान अंग्रेजी का है। इसलिए अंग्रेजी में ही सीखें भारत के लोग, तो बेहतर होगा। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात, उन्होंने कही कि अगर आप यूरोप के अच्छे ज्ञान के साहित्य को इकट्ठा करें और उसको एक दराज में लगा दें, एक शैल्फ में लगा दें, और दूसरी ओर अरब के मुल्कों और एशिया के मुल्कों और भारत और चीन जैसे मुल्कों के तमाम ज्ञान की किताबों और कविता, उपन्यास साहित्य की जितनी भी किताबें हैं, उन सबको अगर आप लगा दें और उनकी कई अलमारियां भर दें, तो भी यूरोप के एक शैल्फ की पुस्तकों में जो ज्ञान है, उससे भी वह कहीं पीछे रह जाएगा। उसके लिए एक शैल्फ ही काफी है। तीसरी बात, उन्होंने कहा कि आपकी मातृभाषा के जरिए तो कोई भी आगे नहीं बढ़ सकता है। इसीलिए अंग्रेजी सर्वोत्तम भाषा होगी। साथ में यह भी कहा कि 1835 में सरकारी दफ्तरों में, जो ऊंचे पदो पर भारतीय आकर बैठ गए हैं, जिनको ऊंचे पद मिल चुके हैं, वे तो अभी से ही अंग्रेजी को सब कुछ मान चुके हैं, इसलिए उसी को ही आगे बढ़ाना बेहतर होगा। यह आज भी देख लें, जो आज हो रहा है, वह 1835 में भी हो रहा था। आखिरी बात, जो उन्होंने कही कि हमारे जो सीमित संसाधन हैं (1835 में कह रहे हैं) उनके मद्देनजर भारत के सब लोगों को शिक्षित करना तो हमारे लिए मुमकिन नहीं है। यही बात आज प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह भी कहते हैं। वे अपने बजट में सारे देश को कहते हैं– हमारे लिए देश में सब बच्चों के लिए पूर्व प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था करना, प्राईमरी और मिडिल स्कूल खोलना, सेकण्डरी स्कूल खोलना, हायर सेकण्डरी स्कूल खोलना, कॉलेज और यूनिवर्सिटी खोलना मुमकिन नहीं है। हमारे पास पैसा नहीं है। जो बात 1835 में लॉर्ड मैकॉले ने कही, ठीक वही बात आज आजाद हिंदुस्तान की बारहवीं योजना के तुरंत पहले प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह भी कह रहे हैं। इसके पहले के सभी प्रधानमंत्रियों ने यही बात कही। बिना किसी पार्टी के अंतर को मानते हुए, सब प्रधानमंत्रियों ने यही बात कही। अगले वाले भी यही कहेंगे, अगर हम लोग उठ खड़े नहीं हुए तो। लॉर्ड मैकॉले ने एक बड़ी महत्त्वपूर्ण बात कही। उन्होंने कहा कि भारत के वे लोग जिनको हम शिक्षित करेंगे वे इस देश की जनता को हमारी बात समझाने के लिए 'व्याख्या' करेंगे, हमारे 'इंटरप्रेटर' बनेंगे। आज की ताजा राजनीतिक भाषा में हमारे दलाल बनेंगे। हम जो चाहते हैं, उसको देश भर को उनकी बोलियों में समझाते जाएंगे। हम अंग्रेजी में उन्हें समझाएंगे, उनकी बोलियों में वे देश को समझाएंगे। हम एक ऐसा वर्ग खड़ा करने जा रहे हैं हिंदुस्तान में, जिसकी चमड़ी और खून का रंग तो वही होगा, जो भारतीयों का होता है, लेकिन उनकी अभिरुचियां, उनके मत, उनके नैतिक मूल्य और उनकी बुद्धि ब्रिटिश राज के अनुसार काम करेगी।

इसे आज के प्रचलित शब्दों में 'दलाल' कहा जाता है। आज आप ब्रिटिश राज के शब्द को बदलकर यदि

उसे 'कॉरपोरेट राज' लिख दें, तो जो दुनिया का कॉरपोरेट राज चाहता है, आज उसके हिसाब से, पूरे भारत की शिक्षा चलाई जा रही है। बार–बार कहा जा रहा है कि हमारे पास संसाधन नहीं हैं। पैसा नहीं हैं, हम गरीब मुल्क हैं। दूसरी तरफ, हम कहते हैं कि हिन्दुस्तान की राष्ट्रीय आमदनी सकल राष्ट्रीय उत्पाद, जिसको अंग्रेजी में 'ग्रोस डोमेस्टिक प्रोडक्ट' बोलते हैं, जी.डी.पी. कहते हैं, वह नौ फीसदी की दर से घोड़े की चाल से दौड़ रही है, छलांग लगा रही है। बड़े गर्व से हम दुनिया को सुनाते हैं और केवल आठ साल बाद हम दुनिया की महाशक्ति बनने का सपना देख रहे हैं। लेकिन बार–बार कहे जा रहे हैं, हमारे पास पैसा नहीं है। इसलिए विदेशी विश्वविद्यालय आएंगे, बाहर से पैसा लाया जाएगा, फॉरेन डायरेक्ट इंवेस्टमेंट होगा। वह सब होगा क्योंकि हमारे पास पैसा नहीं है। लॉर्ड मैकॉले और हम आज एक ही बात कह रहे हैं। इस कॉरपोरेट दुनिया का जो कब्जा है, दुनिया भर के संसाधनों पर, उस कब्जे को और मजबूत करने के लिए हम दलाल तैयार करेंगे। जो हमारी भाषा में सीखेंगे और उनकी भाषा में लिखेंगे। आप लोगों की बोलियों में, आपको समझाते जाएंगे। मीडिया यह काम करता है। ये है 'मैकॉलेवाद'। यह बात, उसके बाद, बहुत से शिक्षाशास्त्रियों ने, समाज विज्ञानियों ने स्थापित की है कि जो राज सत्ता होती है, वह हमेशा अपने पक्ष में लोगों का मानस, चिंतन और ज्ञान तैयार करने के लिए शिक्षा देती है। वह राजसत्ता के खिलाफ आवाज खड़ी करने के लिए, विद्रोह करने के लिए शिक्षा नहीं देती है। हम उनके द्वारा दी गई शिक्षा के विद्यालयों से, उनके कॉलेजों, विश्वविद्यालयों से किसी भी प्रकार अपने पक्ष की बात निकाल लें, वह हमारी जिम्मेदारी होगी, उनकी नहीं है। वे तो आपको गुलाम बनाने की ही शिक्षा देंगे। इस बात को गांधीजी ने 1909 में समझ लिया, जब 'हिन्द स्वराज' लिखा। हिन्द स्वराज सबसे पहले गुजराती में लिखा गया। जब गुजराती में लिखा गया, तो उस पर प्रतिबंध लग गया। ब्रिटिश सरकार उसके लिखने और छपने से घबरा गई। तब दक्षिण अफ्रीका में बैठकर गांधीजी ने स्वयं उसका अंग्रेजी अनुवाद किया, उस पर भी प्रतिबंध लग गया। ब्रिटिश सरकार इतनी बौखलाई उस छोटे से दस्तावेज से, जो अभी भी शायद दस–बारह रुपए में रेलवे स्टॉल पर मिल जाता है। उसमें उन्होंने कहा, मैकॉले की शिक्षा हमको गुलाम बना रही है। आप पढ़ लीजिए हिन्द स्वराज में सब लिखा हुआ है। उन्होंने मैकॉले की शिक्षा और भारत में जो औपनिवेशिक सत्ता मौजूद थी ब्रिटिश साम्राज्य की, उसको एक सभ्यता के द्वन्द के रूप में देखा। 1909 के बाद गांधीजी के विमर्श में यह बात बड़ी साफ–सुथरे रूप में आ गई और आगे बढ़ती गई। लेकिन इसके और पहले, सबसे पहले भारत में मैकॉले की शिक्षा में ज्ञान का जो चरित्र था, उसके खिलाफ आवाज महात्मा ज्योतिबा फूले ने खड़ी की। महात्मा ज्योतिबा फूले ने अपनी आवाज का यह प्रतिवेदन सन् 1882 में ब्रिटिश राज के द्वारा स्थापित हंटर आयोग के सामने पेश किया था।

यह बहुत लंबा प्रतिवेदन है, जिसको उन्होंने मराठी में लिखा है और उसे अंग्रेजी में पेश किया। उसमें उन्होंने इस बात को लिखा कि, बहुत बड़ी विडंबना है कि ब्रिटिश राज देशभर के मेहनतकश मजदूरों और किसानों के पसीने की गाढ़ी कमाई से राजस्व इकट्ठा करता है, रेवेन्यू बटोरता है। लेकिन जब वह उसको खर्च करता है, और जब शिक्षा के लिए खर्च करता है, तो उसका सारा फायदा उच्च वर्गों और उच्च वर्णों को मिलता है। अपर क्लासेज एवं अपर कास्ट्स को मिलता है। अगर महात्मा फूले आज जिंदा होते, तो आज जो हो रहा है, उसको फिर उन्हीं शब्दों में, उसी विश्वास के साथ लिख देते कि कमाई तो देश के तमाम गरीब लोग कर रहे हैं, जिनको माना जाता है 93 फीसदी भारत के लोग, जो असंगठित या

अनऑर्गनाईज्ड क्षेत्र में काम करते हैं, उत्पादन करते हैं। केवल 7 फीसदी लोग, जो संगठित क्षेत्र में उत्पादन करते हैं, वह देश का यह सारा मध्यम वर्ग है, उसमें इनके फायदे के लिए सारी शिक्षा का इस्तेमाल होता है। याद करें, अर्जुन सेन गुप्ता आयोग की रिपोर्ट, जिसमें कहा गया कि 78 फीसदी लोग वे हैं, जो रोज महज 20 रुपए में गुजर–बसर करते हैं। तो 78 फीसदी मायने जो 20 रुपए में गुज़र–बसर करते हैं या 93 फीसदी मायने जो असंगठित क्षेत्र के लोग हैं, उनके लिए शिक्षा की योजना नहीं बनती है। वह बनती है, एक उच्च मध्यम वर्ग के फायदे के लिए। महात्मा फूले ने दूसरी, जो बड़ी महत्त्वपूर्ण बात कही, वह मैं उन्हीं के शब्दों में रखूंगा। उन्होंने कहा कि ''जो प्राथमिक विद्यालय मैं देख रहा हूं, वे कतई ठीक नहीं हैं, भारत के लिए। उनसे न तो कोई उपयोगी ज्ञान मिलता है और न ही कोई व्यावहारिक ज्ञान जिसको प्राप्त करके भारत के बच्चे आगे बढ़ सकें अपनी जिंदगी में।'' आगे वे लिखते हैं, ''ये जो शिक्षा देने की पूरी मशीनरी खड़ी कर दी गई है, ये केवल नौकरी दे रही है। उसमें आमूलचूल तब्दीली की जरूरत है।'' वे आगे एक बड़ी खूबसूरत बात कहते हैं। वे कहते हैं, ''हमें तो ऐसे शिक्षक चाहिए, जो अपने हाथों में हल पकड़ सकेंगे या बढ़ई या सुथार की आरी को अपने हाथों में पकड़ कर इस्तेमाल कर सकें। उनमें यह भी क्षमता हो कि वे समाज के सबसे निचले तबकों के साथ दोस्ती कर सकें, इज्जत के साथ उनसे मिलजुल सकें।'' उन्होंने यह बात, बड़े कष्ट के साथ लिखी। आज शिक्षा विभाग में जितने शिक्षक नौकरी पा रहे हैं, वे सब उच्च वर्गों, उच्च वर्णों के हैं। वे न तो हल पकड़ सकते हैं और न ही आरी और न ही समाज के निचले तबकों के साथ दोस्ती कर सकते हैं। हम सोचें, हम क्या बदल गए हैं, हममें कुछ फर्क है, उस समय से? महात्मा फूले ने फिर कहा कि ब्रिटिश सरकार एक ऐसी पाठ्यचर्या बनाए, जो खेती से जुड़ी हुई हो, श्रम आधारित हो और कुछ उपयोगी कलाओं को भी सिखा दे, जो हमारे बच्चों का नैतिक उत्थान करे। यह बहुत जरूरी है। तीसरी बात, उन्होंने कहा, ''मैं बात जरूर प्राथमिक विद्यालयों की कर रहा हूं, पर मैं यह बात साफ करना चाहता हूं कि हमारी मांग केवल अच्छे प्राथमिक विद्यालयों की नहीं है, हमारी मांग अच्छी उच्च शिक्षा की भी है।'' फूले का नाम जपने वाले बहुत कम लोग इस बात को पकड़ पाए। एक पैराग्राफ में उन्होंने कहा कि कोई भी मुल्क आगे नहीं बढ़ सकता, जिसकी उच्च शिक्षा पीछे रह जाए। साथ में यह भी कहा कि प्राथमिक शिक्षा तभी आगे बढ़ेगी, जब उच्च शिक्षा आगे बढ़ेगी। क्योंकि प्राथमिक शिक्षा में जिस ज्ञान की जरूरत है, चाहे वह सामाजिक विज्ञान हो, मनोविज्ञान हो या विज्ञान, उसकी उत्पत्ति और उसकी तैयारी उच्च शिक्षा में ही होती है। ये तीन बहुत महत्त्वपूर्ण बातें 1882 में कही गई, सवा सौ साल पहले। इस पृष्ठभूमि में, हम गांधी के इस सवाल को देखें, जो उन्होंने कहा कि मैकॉले की शिक्षा हमें गुलाम बना रही है।

महात्मा फूले ने यह भी कहा कि जो पाठ्यचर्या और शिक्षा शास्त्र के विचार बुनियाद बने हुए हैं भारत की शिक्षा के, आधुनिक शिक्षा के, वे आयातित हैं ऑक्सफोर्ड और कैंब्रिज से, उनका भारत के हालात से कुछ लेना देना नहीं है। आज तक वही चल रहा है। आज देश में शिक्षक–प्रशिक्षण या अध्यापक शिक्षा का जो मॉडल इस्तेमाल किया जाता है, जिसमें लेसन प्लानिंग होता है, इसका 1890 में जन्म हुआ था, ऑक्सफोर्ड और कैंब्रिज में। उन्होंने छोड़ दिया वह रास्ता। वह कुछ और रास्ते पर चल पड़े और हम उनके लेसन प्लान को आज तक हिंदुस्तान में जिंदा रखे हुए हैं, अध्यापक शिक्षण में। हमने उसे नहीं बदला। फिर फूले ने एक बड़ी महत्त्वपूर्ण बात रखी कि ऐसा लगता है कि भारत में जितनी शिक्षा ब्रिटिश सरकार दे रही है, उसका एक ही मकसद है। वह है, ब्रिटिश सरकार के द्वारा बनाए हुए विभिन्न सरकारी विभागों

में और ईस्ट इंडिया कंपनी में और ब्रिटेन के अन्य कंपनियों में उनको नौकरियां मिलती जाएं। इस शिक्षा का मकसद लोगों को नौकरी के लिए तैयार करना है। आज भी स्वतंत्र भारत में वही हो रहा है।

महात्मा फूले ने कहा कि जो शिक्षा केवल रोजगार देने के लिए दी जाती है, उसको मैं शिक्षा मानने के लिए तैयार नहीं हूं। उन्होंने यह नहीं कहा कि रोजगार के लिए शिक्षा नहीं होनी चाहिए बल्कि वे ब्रिटिश सरकार के तमाम विश्वविद्यालयों को चाहे वे प्राथमिक हों या उच्च शिक्षा के, जो केवल नौकरियां देने के लिए लोगों को तैयार कर रहे हैं, को शिक्षा देने वाले विद्यालय मानने को तैयार नहीं थे। शिक्षा को लेकर टैगोर और गांधी के बीच में भी भारी मतभेद थे, लेकिन एक बात पर वे एक–मत थे कि शिक्षा केवल रोजगार या नौकरियों के लिए नहीं हो सकती। दोनों में मतभेद की वजह यह थी कि महात्मा गांधी भारत की आजादी की लड़ाई का नेतृत्व कर रहे थे और साम्राज्यवाद के खिलाफ लड़ रहे थे, लामबंद कर रहे थे लोगों को, तो उनका एक नजरिया था कि शिक्षा कैसी हो। दूसरी ओर, टैगोर शिक्षा को सौन्दर्य बोध और भारत की प्राचीन संस्कृति से निकली हुई ललित कलाओं के साथ जोड़ कर, शिक्षा का और खास कर उच्च शिक्षा का पुनर्निर्माण कर रहे थे। उनका शिक्षा को देखने का एक अलग नजरिया था। दोनों के बीच में बहुत सारी समान बातें भी थीं। गांधीजी लगातार रूप से यह कहते रहे कि शिक्षा हमें अपनी जड़ों से काट रही है और जड़ों से काटने वाली शिक्षा सही नहीं होती। गांधीजी ने आगे कहा हम अपनी जड़ों से तो जुड़े रहेंगे लेकिन आगे बढेंगे और हमारी जड़ों में जो भी खामियां हैं, जो भी विसंगतियां हैं, जो भी उसमें दकियानुसीपन है, उन सबसे वैज्ञानिक दृष्टिकोण से लड़ेंगे, उनको बदलेंगे, लेकिन अपनी जड़ों से जुड़ कर लड़ेंगे न कि जड़ों से कट कर।

एक सवाल, जो बहुत विवादास्पद भी रहा है गांधी के विमर्श में। लोगों ने उनसे कहा कि अगर आप पुराने भारत की बात कर रहे हैं तो पुराने भारत में खास कर गावों में जाति और वर्ग का भेद, औरत और मर्द का भेद और विकलांग और सामान्य लोगों में भी बहुत भेदभाव रहा। यह भेदभाव हमारे पुराने समाज की जड़ में है, बुनियाद में है। इसको गांधीजी ने बार–बार माना और बार–बार इसका जिक्र किया। लेकिन उनका मानना था कि हम इस भेदभाव को खत्म करने के लिए इसी समाज में लड़ाई लड़ेंगे, इसी समाज को बदलेंगे। यहां से शुरू होती है, गांधी और अंबेडकर के बीच की वैचारिक लड़ाई। अंबेडकर ने यह कहना शुरू किया कि जब तक गांधीजी आप वर्णाश्रम स्वीकारेंगे, तब तक आपकी वे सारी बातें कि हम जाति का भेदभाव खत्म करेंगे, मुझे मान्य नहीं हैं। अंबेडकर का मानना था कि जब तक वर्णाश्रम रहेगा, तब तक जाति का भेदभाव कायम रहेगा और तब तक हिंदुस्तान में कभी भी बराबरी नहीं आ सकती। अंबेडकर ने बड़े पुख्ता तरीके से इस बात को बौद्धिक और राजनैतिक स्तर पर भी पेश किया, गांधीजी के सामने। मेरा मानना यह है कि जो पूना पेक्ट कहलाता है, जिसमें गांधी और अंबेडकर के बीच में एक अलग ढंग की बहस हुई कि चुनाव प्रणाली में क्या–क्या परिवर्तन होने चाहिए, के बारे में उनके बीच में एक समझ बनी, एक तरह का समझौता हुआ। मुझे लगता है कि उसके बाद गांधीजी के दृष्टिकोण में बहुत तेजी से परिवर्तन आया। गांधीजी की खासियत थी कि वे लगातार सीखते थे। जो उनके विरोधी होते थे, उनसे शायद ज्यादा तेजी से सीख लेते थे और जो उनके पक्ष के होते थे, उनसे धीमे–धीमे सीखते थे। सीखते सभी से थे। बच्चे से भी सीखते थे, बड़ों से भी सीखते थे, हर एक से सीखते थे। इस बात को गांधीजी ने बहुत ही खूबसूरत ढंग से लिखा है, जब 1931 में उन्होंने हिन्द स्वराज की नई

प्रस्तावना लिखी थी, उन्होंने लिखा कि जब लोग मुझे पढ़ते हैं, तो कहते हैं कि पहले तो आपने कुछ और कहा था, अब आप कुछ और कह रहे हैं। उन्होंने कहा, हां मैं लगातार नई बात कहता हूं, नई बात सीखता जाता हूं और उन सब विद्वानजनों से मेरा अनुरोध है कि जब वे मुझे पढ़ें, तो मेरी लिखी हुई चीज की तारीख भी नोट कर लें और साथ में तारीख को देख कर मेरी व्याख्या करें, नहीं तो उलझ जाएंगे मेरी बातों में। क्योंकि पहले मैंने कुछ और कहा था। अंबेडकर से उन्होंने बहुत कुछ सीखा। वर्धा में अखिल भारतीय शिक्षा सम्मेलन में, उन्होंने जो भाषण दिया, उसमें तो मुझे बिल्कुल अंबेडकर का प्रभाव (1933–34 का विवाद) दिखता है। मुझे लगता है कि दोनों ने एक बात कही थी कि समाज में शिक्षा की भूमिका क्या होनी चाहिए। अंबेडकर ने एक नारा दिया– ''शिक्षित बनो, संगठित हो और संघर्ष करो।'' तो उन्होंने केवल दलितों के संघर्ष को आगे बढ़ाने के लिए नारा नहीं दिया बल्कि यह नारा पूरे भारत के लिए है। क्योंकि ये मानना बहुत गलत होगा कि अंबेडकर केवल दलितों के मसीहा थे, जिस रूप में उनको प्रस्तुत किया गया है। जब संविधान सभा में यह तय हुआ कि अंबेडकर संविधान बनाने की ड्राफ्टिंग कमेटी के चेयरमैन बनेंगे, तब उन्होंने उस संदर्भ में चार बड़े भाषण दिए थे, वे पढ़ने योग्य हैं। उन भाषणों को अगर आप पढ़ें, तो आप भौंचक्के रह जाएंगे। वे केवल दलितों की तो बात ही नहीं कर रहे हैं, वे तो पूरे हिंदुस्तान की बात कर रहे हैं। नया हिंदुस्तान, जो आजादी के बाद बनने वाला है। नया संविधान जो बनने वाला है, उसका वैचारिक, राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक खाका क्या होगा, उसकी राजनीति क्या होगी, वे उसकी बात कर रहे हैं। उन्होंने जब यह नारा दिया, ''शिक्षित बनो, संगठित हो और संघर्ष करो'', तो वे क्या कह रहे हैं। अगर हम आपस में जाति के भेदभाव की बात करते हैं, तो दलितों के आपस में कम भेदभाव नहीं हैं। ऐसा नहीं है कि सारे दलित एक ही जाति के हैं। दलितों के बीच में भी भेदभाव है। उनके अंदर भी खान–पान की, विवाह आदि की बंदिशें होती हैं, अलगाव हैं। अंबेडकर यह तो नहीं कह रहे थे कि ऐसी शिक्षा दें, जो हमें और छोटी–छोटी जातियों में बांट दे और एक दूसरे के खिलाफ खड़ा कर दे और न ही हमें कह रहे हैं कि आप ऐसी शिक्षा पाइए, जो आपको एक दूसरे के खिलाफ कर दे। एक मजहब को दूसरे मजहब के खिलाफ, एक भाषा बोलने वाले को दूसरी भाषा के खिलाफ, एक अंचल के लोगों को दूसरे अंचल के खिलाफ, जो आज हिंदुस्तान में हो रहा है। वे एक ऐसी शिक्षा की बात कर रहे हैं, जो हमारे बीच में अंतर्निहित एकता है, उसको पुख्ता करे। आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्था में जो हमारा बड़ा दुश्मन है, उसके खिलाफ संघर्ष करने के लिए हमें तैयार करे। यानि कि ठीक वही बात, जो गांधी कर रहे थे, ठीक वही बात जो महात्मा ज्योतिबा फूले कर रहे थे। तीनों की बातों में यह एक समान सूत्र मैं ढूंढ़ रहा हूं, जो मुझे दिखता है। शिक्षा ऐसी हो, जो समाज और राजनीति में बदलाव के लिए हमें तैयार करे, न कि उसकी यथास्थिति को बरकरार रखने के लिए।

शिक्षाशास्त्र में दो शब्द हैं, और मैं जानबूझ कर इस सैद्धांतिक शब्दावली का उपयोग कर रहा हूं। क्योंकि सैद्धांतिक शब्दावली पर अगर आप विचार करेंगे, तो बहुत कुछ खुद निकाल लेंगे। एक शब्द है, 'सामाजिक पुनरुत्पादन' अंग्रेजी में 'सोश्यल रिप्रोडक्शन' और दूसरा, शब्द है ठीक इसके खिलाफ 'परिर्वतनकारी शिक्षा', 'ट्रांसफारमेटिव एज्युकेशन'। सामाजिक पुनरुत्पादन का वही मतलब है, जो आज की सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था, उसका सामाजिक तानाबाना, जो भेदभाव पर टिका हुआ है, गैर बराबरी पर टिका हुआ है, लालच पर टिका हुआ है, मोह पर टिका हुआ है, अनैतिक मूल्यों पर टिका हुआ है, उस तमाम सामाजिक, राजनीतिक तानेबाने को बरकरार रखने वाली जो शिक्षा होगी, वह सामाजिक

पुनरुत्पादन की होगी। जो इसी समाज का पुनरुत्पादन कर रही है। इसको बदलने वाली वह शिक्षा होगी, जो हमें सवाल पूछना सिखाएगी, हमारे अंदर जिज्ञासा पैदा करेगी, हमें शोध करना सिखाएगी, हमें समीक्षा करना और प्रयोग करना सिखाएगी, नए रास्ते खोजने और उन पर चलने के लिए हिम्मत भी पैदा करेगी, जो हमारे ज्ञान के क्षेत्र में भी हमें नए रास्ते दिखाएगी और हमारी भावनाओं के क्षेत्र में भी हिम्मत पैदा करके, उन नए रास्तों पर चलने की हिम्मत पैदा करेगी और लगातार सृजन करने की क्षमता पैदा करेगी। ऐसी परिवर्तनकारी शिक्षा की वकालत महात्मा फूले ने की, गांधीजी ने की और अंबेडकर ने की। अगर मैं संविधान की बात नहीं करूं, तो अंबेडकर की बात अधूरी रह जाएगी। ऐसा नहीं है कि संविधान में जो कुछ भी लिखा है, वह बाबा साहेब अंबेडकर की ही बात थी। संविधान में कई मोर्चे बाबा साहेब अंबेडकर ने हारे हैं। अगर आप संविधान सभा की बहस को पढ़ें और उसके इतिहास को देखें, तो वे कई मोर्चे हारे हैं। लेकिन कई मोर्चे जीते भी हैं। कोई अकेले बैठ कर तो उन्होंने संविधान बनाया नहीं। एक बड़ी संविधान सभा थी और वह समाज, जो कभी एक औपचारिक रूप में 'राष्ट्र' नहीं बना था, उसमें हजारों रियासतें थीं, जो आप सब जानते हैं। पूरा देश रियासतों में बंटा हुआ था और ब्रिटिश इंडिया खुद उन रियासतों के बीच में छोटे–छोटे टापुओं के रूप में था। अनेक भाषाओं के बोलने वाले लोग जो कभी आपस में मिले–जुले नहीं थे। खास कर पूर्वांचल के लोग, नागालैंड, मिजोरम, अरुणाचल प्रदेश, मेघालय के बहुत सारे अंचल के लोग। खासी और गारो जाति के लोग तो जानते भी नहीं थे कि आजादी की लड़ाई कैसी है, बाकी हिंदुस्तान में क्या हो रहा है। शायद गांधीजी भी बहुत जगहों पर नहीं पहुंच पाए थे। हालांकि बहुत जगहों पर वे गए थे। ये हिस्सा भी शायद उनसे छूट गया। नागालैंड के लोग तो आज भी कहते हैं कि हम भी आजादी की लड़ाई लड़ रहे थे, ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ। वे अलग लड़ रहे थे, हमारे साथ मिल कर नहीं। मेघालय के खासी और गारो के इतिहास में लिखा हुआ है कि उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ कैसी लड़ाई लड़ी। क्या आपने कभी पढ़ा है कि मेघालय, जो हमारे देश का एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रदेश है, वहां के खासी और गारो लोगों ने और नागालैंड के सेमा लोगों ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ स्वतंत्र रूप से अपनी लड़ाइयां लड़ीं। कभी इसका इतिहास आपने सीखा है, मैंने तो नहीं सीखा। आपकी पुस्तकों में यदि आज आ गया हो, तो जरूर बता दीजिए, मेरी पुस्तकों में तो कभी भी नहीं था। तो एक बिल्कुल अलग इलाका था, जो हमसे जुड़ने की कोशिश में था, भारत की इस मुख्य धारा में। जो भी मुख्य धारा हो, मुझे नहीं मालूम कि मुख्य धारा क्या थी। जिसको लोग आज मुख्य धारा बोलते हैं, उस समय भी बोलते थे कि ये भारत है, उसमें जोड़ने की कोशिश थी। उधर हिंदू और मुसलमानों के बीच में द्वन्द्व बढ़ रहा था, वह भी बहस चल रही थी। अलग–अलग भाषाओं की लड़ाई थी। जैसे ही हमारी संविधान सभा में यह आग्रह, जिसको मैं दुराग्रह मानता हूं, मुझे माफ करेंगे कि हिंदी ही भारत की राष्ट्र भाषा होनी चाहिए। मैं दुराग्रह बड़ी हिम्मत से बोल रहा हूं, इस बात से। तो तमाम दक्षिण भारत के लोग खड़े हो गए कि तो फिर आप अपना हिंदुस्तान बना लीजिए हमें छोड़ दीजिए क्योंकि हमारी तो भाषा हिंदी नहीं है। क्या आप तमिल को मानेंगे, तेलुगू को मानेंगे, कन्नड़ और मलयालम को भारत की भाषा बनाएंगे। वे भी तो भारत की भाषाएं हैं। ये तमाम विवाद जब खड़े हो रहे थे, उस समय बाबा साहेब अंबेडकर ने यह बात कही कि हम ये याद कर लें कि आज हम इस संविधान सभा में नए भारत का निर्माण करने के लिए बैठे हैं। जो भारत पहले नहीं था, उसका संविधान बना रहे हैं। इस भारत में अलग–अलग तबके हैं, उनके बीच में अलग–अलग प्रकार की लड़ाइयां हैं। यह कहते

हुए एक बहुत ही खूबसूरत बात उन्होंने कही कि कल हमें इकठ्ठे एक मुल्क का हिस्सा बनना है। एक मुल्क का नागरिक बनना है। उस मुल्क का संविधान कैसा होगा, उसको बनाने के लिए हम बैठे हैं। अपने–अपने तबकों का हिंदुस्तान बनाने के लिए नहीं बैठे हैं। एक नया हिंदुस्तान गढ़ने बैठे हैं। इसलिए हमें आपस में बातचीत करना सीखना होगा। एक–दूसरे के डर से, आशंकाओं से और उनके सवालों से जूझना पड़ेगा। उनके दिल में अगर कोई डर बैठ गया है, एक–दूसरे मतों के लोगों को लेकर, तो उससे भी हमें जूझना होगा। तभी वे हमारे साथ रहेंगे। उस संविधान को बनाने वाले बाबा साहेब अंबेडकर की एक दृष्टि थी, जो संविधान में दिखती है। अंबेडकर ने अनुच्छेद 45 लिखा। जब संविधान का यह अनुच्छेद प्रारूप समिति के द्वारा लिखा जा रहा था तो उसी समय मौलिक अधिकार क्या हों, यह तय करने के लिए मौलिक अधिकार की एक अलग कमेटी बनी थी। इस कमेटी के सामने प्रारूप समिति का एक प्रस्ताव गया कि शिक्षा के इस अनुच्छेद 45 को मौलिक अधिकार माना जाए। मौलिक अधिकार कमेटी ने अंबेडकर की कमेटी के इस प्रस्ताव को मानने से इंकार कर दिया। इस कमेटी में देश के बहुत बड़े–बड़े राजनेता जो आजादी की लड़ाई के महान नेता थे, मौजूद थे, जिन्होंने इंकार किया। उन्होंने वही कहा, जो कि मैकॉले ने कहा था। उन्होंने कहा कि हम हर ऐरी–गैरी चीज को थोड़े ही मौलिक अधिकार बना लेंगे। यही शब्द थे कि हर ऐरी–गैरी चीज को हम थोड़े ही मौलिक अधिकार बना लेंगे। आखिरकार, हिंदुस्तान एक गरीब मुल्क है, सबको शिक्षित करने के लिए हमारे पास संसाधन कहां हैं। क्या लिखा था अनुच्छेद 45 में, जिसको कि नकारा गया और जिससे डर गए मौलिक अधिकार कमेटी के लोग। उसमें यह लिखा था कि इस संविधान के बनने के दस साल के भीतर यानी कि 1950 से लेकर 1960 तक भारत के चौदह वर्ष तक की उम्र के सभी बच्चों को (एक–एक शब्द इसमें महत्त्वपूर्ण है, यह नहीं लिखा था कि छः से चौदह वर्ष की आयु के बच्चों को) मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा दे दी जाएगी। इससे घबरा गई हमारी मौलिक अधिकार कमेटी। अब तो ब्रिटिश लोगों की बात नहीं हो रही है, अब तो अपने लोगों की बात हो रही है, जिनकी चमड़ी का रंग वही है, जो हमारा है।

अनुच्छेद 46 भी शिक्षा के बारे में बात करता है। सब बच्चों को चौदह साल की उम्र तक की शिक्षा की। यानी कि आमतौर पर पांच से छः साल तक उम्र के बच्चे पहली कक्षा में पहुंचते हैं और अगले आठ साल तक स्कूल में रहेंगे, तो आठ साल की शिक्षा पूरी कर लेंगे, जिसको आज की भाषा में प्रारंभिक शिक्षा कहा जाता है। छः साल से नीचे वाले, कम से कम तीन साल से छः साल उम्र के बच्चे, पूर्व प्राथमिक शिक्षा, जिसका कि गुजरात तो एक सबसे बड़ा प्रेरणादायक मॉडल है, पूरे हिंदुस्तान के लिए। जहां बालवाड़ी का एक बड़ा आंदोलन चला है। सौराष्ट्र गुजरात के गिजुभाई ने तो पूरी दुनिया को बताया कि छोटे बच्चों के साथ कैसे काम किया जाए और पढ़ाई–लिखाई का स्वरूप क्या हो। उस गिजुभाई के प्रदेश में कह सकते हैं कि गांधीजी ने यह बात रखी, अंबेडकर ने उसको संविधान में अनुच्छेद 45 में डलवाया, कि तीन से छः साल की उम्र के बच्चों को भी शिक्षा के अधिकार में शामिल किया जाए। साथ ही तीन साल से नीचे की उम्र के बच्चों के लिए उन्होंने कहा, (अनुच्छेद 39 को पढ़िए,) कि इन सब बच्चों को एक ऐसा माहौल दिया जाए, ऐसा पोषण उपलब्ध हो, आहार उपलब्ध हो ताकि वे स्वस्थ जीवन जी सकें और एक सम्मान–जनक नागरिक बनने के लिए तैयार हो सकें। क्या इतना ही लिखा है उसमें, नहीं और बहुत कुछ लिखा है। अगर पूरी बात समझनी है, तो संविधान को और पलटिए। उसी अनुच्छेद 39 में वे वाक्य

हैं, जिनको पढ़ने से हमारा सुप्रीम कोर्ट भी घबराता है। सुप्रीम कोर्ट के जज भी घबराते हैं। इसका जिक्र कभी भी उनके निर्णयों में नहीं आता है। अनुच्छेद 39 का उप–अनुच्छेद 'बी' और 'सी' यह कहता है कि भारत के तमाम भौतिक संसाधनों की मिल्कियत और नियंत्रण इस प्रकार से स्थापित किया जाए कि इससे अधिकतम लोगों का सार्वजनिक रूप से भला हो। तमाम संसाधनो में जमीन ही नहीं, जंगल, पानी, नदियां और ज्ञान व शिक्षा आते हैं, ये भी तो संसाधन हैं। इसका अगला उप–अनुच्छेद 'सी' कहता है कि भारत की अर्थव्यवस्था का संचालन इस प्रकार से किया जाए कि उसकी संपत्ति और उत्पादन के साधनों का फायदा देश भर के आम लोगों को मिल पाए। मुझे पूरा विश्वास है कि इन दोनों उप–अनुच्छेदों का लेखन बाबा साहेब अंबेडकर की लेखनी से हुआ है।

संविधान का अनुच्छेद 14 कहता है कि हिंदुस्तान का हर एक नागरिक, कानून के सामने बराबर होगा। अनुच्छेद 15 का उप–अनुच्छेद 'एक' कहता है कि भारतीय राज्य किसी भी नागरिक के साथ भेदभाव नहीं करेगा। चाहे वह किसी भी भाषा, मजहब, लिंग या अंचल का हो। गैर–बराबरी और भेदभाव को मिटाना भारतीय संविधान की नींव है। जिसके लिए आज हम पूरी तरह बाबा साहेब अंबेडकर के प्रति शुक्रगुज़ार हैं, गांधीजी उतनी ही तेजी के साथ बराबरी की बात करते हैं, जितनी तेजी के साथ अंबेडकर करते हैं। दोनों में कोई फर्क मुझे नजर नहीं आता। फर्क इतना ही है कि गांधीजी को लगता है कि वर्तमान सामाजिक तानेबाने में ही गैर–बराबरी खत्म करके बराबरी लाई जा सकती है और बाबा साहेब अंबेडकर बार–बार कहते हैं कि ये संभव नहीं है। अंबेडकर कहते हैं कि "आज 26 जनवरी 1950 को हम एक अंतर्विरोधों से भरी जिंदगी में प्रवेश कर रहे हैं।" राजनीति में तो हम बराबरी दे रहे हैं, लेकिन सामाजिक और आर्थिक जीवन में गैर–बराबरी बरकरार रख रहे हैं। राजनीति में हम ये सिद्धांत मानेंगे कि हर इंसान को एक वोट का अधिकार होगा और हर वोट की वही कीमत होगी, जो दूसरे वोट की होगी। पर अपनी सामाजिक और राजनीतिक जिंदगी में हम अपने सामाजिक और आर्थिक ढांचे और उसकी संरचना के कारण, लगातार हर इंसान के वोट की बराबरी की कीमत देने से पीछे हटते रहेंगे, उसको नकारते रहेंगे। हम कितनी देर तक इस बराबरी को सामाजिक–आर्थिक जीवन से नकारेंगे। अगर हमने बहुत देर तक इसको नकारा, तो हम जिस राजनीतिक लोकतंत्र को बना रहे हैं, वो बड़े खतरे में पड़ जाएगा। आज वह खतरे में पड़ चुका है। चाहे आप टू–जी स्पेक्ट्रम की, चाहे आप राष्ट्रमंडल खेलों में हुए घोटाले की बात करें, चाहे आदर्श कॉपरेटिव सोसायटी के घोटाले की बात करें या फिर तमाम तरह के घोटाले जो होते रहते हैं, वे सब जुड़े हैं, इस बात से कि हमने भारतीय संविधान में बाबा साहेब अंबेडकर का बराबरी का जो सिद्धांत था, आर्थिक व्यवस्था को बदलने का जो सिद्धांत था, हमारे संसाधनो पर समाज के नियंत्रण का जो सिद्धांत था, और जो कि गांधीजी का भी सिद्धांत था, इसको हमने पूरी तौर पर नकारा है। ये उस विमर्श की पृष्ठभूमि है, जिसमें हम शिक्षा की बात कर रहे हैं।

विनोबा का लगभग 1967–68 का एक बयान है। वे कहते हैं कि मुझे वर्धा में 15 अगस्त 1947 को बुलाया गया, तो मैंने कहा कि देखो भाई स्वराज तो मिल गया, तो क्या पुराना झंडा एक दिन के लिए भी चलेगा? तब सब लोग मिल कर बोले कि नहीं चलेगा। विनोबा कहते हैं कि यदि पुराना झंडा चला, तो इसका अर्थ होगा कि पुराना राज्य जारी है। जैसे नए राज्य में नया झंडा होता है, वैसे ही नए राज्य में नई तालीम चाहिए। यदि पुरानी तालीम ही जारी रही, तो समझ लेना कि पुराना राज्य ही जारी है, नया राज्य आया

ही नहीं। विनोबा ने कहा कि गांधीजी ने दूर–दृष्टि से नई तालीम नाम की एक पद्धति सुझाई है। अगर मेरे हाथ में राज्य होता, तो मैं सारे विद्यार्थियों की आज छुट्टी कर देता और कहता कि तीन महीने की आपको छुट्टी है, खेल–कूद कीजिए, मजे कीजिए, जरा मजबूत बनिए। थोड़ी खेती–बाड़ी कर लीजिए। स्वराज्य मिला है, उसका आनंद भी ले लीजिए। तब तक शिक्षाशास्त्रियों का सम्मेलन होगा और वे हिंदुस्तान की नई तालीम का एक ढांचा तैयार करेंगे। तब तक छुट्टी। परन्तु उसके बदले में, हमने चार–चार पंचवर्षीय योजनाएं बना ली हैं, लेकिन तालीम का पुराना ढांचा अभी भी लागू है।

आप देख चुके हैं, राज्य के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक चरित्र का क्या रिश्ता होता है शिक्षा के साथ। मैकॉले से लेकर आज तक, सामाजिक पुनरुत्पादन की बात भी जान चुके हैं। कैसे परिवर्तनकारी शिक्षा नकारी जाती है, दबाई जाती है। ये हुआ है और हो रहा है।

अनिल सद्‌गोपाल : किशोर भारती संस्था के संस्थापक, दिल्ली विश्वविद्यालय शिक्षा संकाय के पूर्व डीन, शैक्षिक चिंतन में अग्रणी भूमिका। वर्तमान में अखिल भारतीय शिक्षा अधिकार मंच के अध्यक्षीय मण्डल के सदस्य हैं।

विशेष : 28 फरवरी से 6 मार्च, 2011 तक गूजरात विद्यापीठ के द्वारा आयोजित व्याख्यानमाला की रिकॉर्डिंग से यह आलेख तैयार किया गया है। हम गूजरात विद्यापीठ के आभारी हैं कि इसे पत्रिका में प्रकाशित करने की हमें, अनुमति प्रदान की। व्याख्यान में प्रस्तुत विचार व्याख्यानकार के हैं, उन्हें गूजरात विद्यापीठ संस्था के विचार न समझा जाए।